

शास्त्रीय भोजन विधि – अष्टाङ्गहृदयम्

पुष्पेन्द्र रजक¹, प्रो ज्योति वर्मा

¹पीएच. डी. संस्कृत

शोधसार

वर्तमान समय में व्यस्तता के कारण मनुष्य का स्वास्थ्य सबसे अधिक प्रभावित हुआ है कि मनुष्य को पथ्यापथ्य का ज्ञान ही नहीं है, न ही भोजन की विधि का ज्ञान है। महर्षिवाग्भट्ट कृत अष्टाङ्गहृदयम् में भोजन करने की शास्त्रीय विधि का वर्णन प्राप्त होता है। जिस विधि का प्राथमिक ज्ञान सभी को होना चाहिये। जब भी हम भोजन करते हैं तो हमें भोजन करने का समय, ऋतु, जलवायु, भोजन एवं शरीर की प्रकृति का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। भोजन षड्रस से युक्त हो, भोजन करने के पूर्व शारीरिक शुद्धता एवं स्थान की स्वच्छता एवं शुद्धता का ध्यान रखना चाहिये। भोजन करने से पूर्व गुरुजनों, माता-पिता, देव, अतिथियों एवं बच्चों को भोजन करा दें। भोजन करने से पूर्व परोसे गये भोजन की जाँच करे कहीं भोजन में कुछ अभक्ष्य जैसे – तिनका, केश कोई कीटादि तो नहीं है। आयुर्वेद शास्त्र में भोजन सम्बन्धी और भी अनेक नियम हैं, पर सामान्य रूप से भोजन सम्बन्धी कुछ अनुशासन हम सभी को स्वीकार करना चाहिये।

मुख्यशब्द – भोजन विधि, अष्टाङ्गहृदयम्, आयुर्वेद, त्याज्य भोजन।

भोजन, सभी जीवों की प्राथमिक आवश्यकता है, आज मनुष्य भोजन और स्वास्थ्य के प्रति इतना उदासीन हो गया है कि उसे पथ्यापथ्य की समझ ही नहीं है, विवेकहीन ज्ञानविहीन पशु के लिये यदि कोई भोज्यपदार्थ दिया जाता है, तो वह सूँघकर पथ्यापथ्य की जाँच करते हैं उसके बाद भोज्यपदार्थ खाने, न खाने का निर्णय लेते हैं। पर इतना बुद्धिमान मनुष्य अपने भोज्य पदार्थ की जाँच किये बिना ही ग्रहण कर लेते हैं। भोज्यपदार्थों का ज्ञान और भोज्यपदार्थ की जाँच आवश्यक है, क्योंकि भोजन की प्रकृति मनुष्य के मन या स्वभाव का निर्माण करती है। भोजन के विषय में एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि – “जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन।” अर्थात् हम जैसा भोजन ग्रहण करते हैं, वैसा ही हमारा स्वभाव हो जाता है। भोजन की स्वयं की प्रकृति के साथ-साथ भोजन पकाने की विधि क्या है ? भोजन ग्रहण करने की विधि क्या है ? इन सबका प्रभाव भोजन की प्रकृति पर भी पड़ता है। भारतीय परम्परा में भोजन ग्रहण करने की पद्धति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भारतीय आयुर्वेदिक शास्त्रों में भोजन ग्रहण करने की पद्धति का वर्णन प्राप्त होता है। आयुर्वेदिक शास्त्रों में महर्षिवाग्भट्ट कृत अष्टाङ्गहृदयम् एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अष्टाङ्गहृदयम् में भोजन ग्रहण करने की आदर्श विधि का वर्णन प्राप्त होता है। अष्टाङ्गहृदयम् के अनुसार –

काले सात्त्यं शुचि हितं स्निग्धोष्णं लघु तन्मनाः ॥ अ०६०– सूत्रस्थानम् 8.35

अर्थात् – **काले** – भोजन करने के लिये दिनचर्या के अनुसार उचित समय निर्धारण होना चाहिये। दिनचर्या के साथ ही भोजन में ऋतुचर्या का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। ऋतु के अनुकूल भोज्य पदार्थों का सेवन करना चाहिये। **सात्त्यं** – मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुसार भोजन ग्रहण करना चाहिये। प्रत्येक शरीर की भिन्न प्रकृति होती है। **शुचि** – भोजन, भोजन का पात्र एवं भोजन करने का स्थान भी स्वच्छ, सात्विक एवं पवित्र होना चाहिये। **हितं** – जो शरीर के लिये हितकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक होना चाहिये। **स्निग्धोष्णं** – भोजन स्निग्ध (चिकना) होना

चाहिये ताकि भोजन आसानी से आहारनाल से आमाशय तक पहुंच सके। रुक्ष भोजन होने पर उसे अधिक देर तक चबाना चाहिये। भोजन उष्ण (गरम) होना चाहिये। बासा भोजन नहीं खाना चाहिये। क्योंकि भोजन पकने के कुछ समय बाद भोजन के गुणकारी तत्व नष्ट होने लगते हैं। गरम भोजन करने के सम्बन्ध में चरकसंहिता में निर्देश है कि – “उष्णमश्नीयात्। उष्णं हि भुज्यमानं स्वदते, भुक्तं चाग्निमौदर्यमुदीरयति, क्षिप्रं च जरां गच्छति, वातं चानुलोमयति, श्लेष्माणं च परिशोषयति, तस्मादुष्णमश्नीयात्।।” (च०सं० विमानस्थानम् 1.31) अर्थात् – गरम, जितना गरम मुख में सह सकें, उतना गरम भोजन ही करें, गरम भोजन स्वादिष्ट होता है, गरम भोजन ग्रहण करने से जठराग्नि (पेट के अन्दर भोजन को पचाने वाली अग्नि को जठराग्नि कहते हैं।) बढ़ती है और भोजन जल्दी पच जाता है। गरम भोजन से वृद्धावस्था तेजी से दूर जाती है। गरम भोजन वातदोष को शान्त करता है और कफ को सुखाता है। अतः गर्म भोजन करना चाहिये। **लघु** – भोजन हल्का या सुपाच्य होना चाहिये। जो आसानी से पच सके। अत्यधिक गरिष्ठ भोजन करने से अपच होने लगता है। **तन्मनाः** – भोजन करते समय मन एकाग्र होना चाहिये। मन को प्रसन्न एवं एकाग्र करने के लिये किसी मन्त्र का वाचन करना चाहिये। सम्भवतः मन को प्रसन्न रखने के लिये ही पूजन का क्रम भोजन से पहले है। क्योंकि ध्यान एवं पूजन से मन प्रसन्न एवं एकाग्र होता है।

षड्रसं मधुरप्रायं नातिद्रुतविलम्बितम्। स्नातः क्षुद्धान् विविक्तस्थो धौतकराननः।। अ०ह०— सूत्रस्थानम् 8.36

अर्थात् **षड्रसं** – भोजन में षड् रस शामिल होने चाहिये। चरकसंहिता के अनुसार षड्रस – स्वादुरम्लोऽथ लवणः कटुकस्तिक्त एव च। कषायश्चेति षट्कोऽयं रसानां संग्रहः स्मृतः।। (च०सं० सूत्रस्थानम् 1.65) स्वादु (मधुर), अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), कटुक (कड़वा), तिक्त (तीखा), कषाय (कसैला) छः रस हैं। **मधुरप्रायं नातिद्रुतविलम्बितम्** – भोजन में मधुर रस अधिक होना चाहिये। ऐसे भोज्य पदार्थ को न ही शीघ्र और देरी से खाना चाहिये। **स्नातः** – भोजन करने के पूर्व स्नान करना चाहिये। स्नान करके भूख तेजी से लगती है। **क्षुद्धान्** – और भोजन तब ही करना चाहिये जब तेज भूख हो। **विविक्तस्थो** – भोजन करने के लिये एकान्त स्थान होना चाहिये। **धौतकराननः** – भोजन करने के पूर्व हाथ-पैर और मुख धोना चाहिये।

तर्पयित्वा पितृन् देवानतिथीन् बालकान् गुरुन्। प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽपि प्रतिपन्नपरिग्रहान्।। अ०ह०— सूत्रस्थानम् 8.37

अर्थात् **तर्पयित्वा पितृन् देवान् अतिथीन् बालकान् गुरुन्** – स्वयं भोजन करें इससे पूर्व हम माता-पिता, देवताओं, अतिथियों, बालकों (बच्चों) और गुरुजनों को भोजन से तृप्त करें। क्योंकि बच्चों (बालकों) के भोजन की जिम्मेदारी अभिभावकों की होती है। बच्चों को इतना बोध नहीं होता है कि स्वयं अपने भोजन का ध्यान रख सकें। एवं माता-पिता, देवता, अतिथि, गुरु आदि पूज्यनीय हैं अतः इन पूज्यनीय व्यक्तियों की सेवा में व्यतिक्रम नहीं करना चाहिये अन्यथा इसका दोष होता है। कालिदासकृत रघुवंशम् में प्राप्त कथानुसार – “राजा दिलीप जब इन्द्र से मिलकर पृथ्वी पर लौटते हैं तो कल्पवृक्ष की छांव में बैठी सुरभि गाय का अभिवादन या पूजन नहीं कर पाते हैं, तो सुरभि माता का श्राप राजा दिलीप को लगता है।” इसी प्रसंग में रघुवंशम् में कहा गया है कि – “प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः” (रघु० 1.79) अर्थात् पूज्य व्यक्तियों की पूजा, सेवा या मान-सम्मान में व्यतिक्रम श्रेय या कल्याण को रोक देता है, इसीलिये पूज्य व्यक्तियों को पूर्व में ही भोजन करायें। **प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽपि प्रतिपन्न परिग्रहान्** – जो साधु-सन्त स्वयं भोजन ही पकाते हैं जो भिक्षाटन करके भोजन करते हैं अथवा कोई सेवक या जीव-जन्तु या पशु-पक्षी हों तो उनके भोजन की व्यवस्था करके ही स्वयं भोजन करें। भारतीय परम्परा में भोजन से पूर्व पक्षियों और पशुओं के लिये अन्न निकाला जाता है, घर की पहली गाय की होती है। और आखिरी रोटी कुत्ते की होती है और गौग्रास को निकालने की भी परम्परा रही है।

समीक्ष्य सम्यगात्मानमनिन्दन्नब्रुवन् द्रवम्। इष्टमिष्टैः सहाशनीयाच्छुचिभक्तजनाहृतम्।। अ०ह०— सूत्रस्थानम् 8.38

अर्थात् **समीक्ष्य सम्यक् आत्मान्** – स्वयं के शरीर की प्रकृति, मन की इच्छा की भलीभांति समीक्षा करके ही भोजन करें। अनिच्छा होने पर भोजन न करें यह स्वास्थ्य के प्रतिकूल होता है। लंघन (भूखे रहना) का भी आयुर्वेद

में विशेष महत्त्व होता है। चरक संहिता में लङ्घन के विषय में कहा गया है कि – “लङ्घनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः।” (च०सं०, चिकित्सास्थान, 3.142) ज्वर के समय लङ्घन करना, पसीना लेना, कड़वा रस लेना चाहिये। इसीलिये भोजन के पूर्व स्वयं की समीक्षा आवश्यक है। **अनिन्दन् अब्रुवन् द्रवम्** – भोजन की निन्दा नहीं करना चाहिये। भोज्यपदार्थ को पकाने के पूर्व अच्छे से जाँच कर लें, पकाने वाला व्यक्ति या पाचक व्यक्ति विश्वस्त हो फिर जब भोजन तैयार हो जाये तब फिर भोजन की कमी नहीं देखना चाहिये। भोजन सम्मान एवं प्रसन्न मन के साथ ग्रहण करें। साधु-सन्त या सिद्धपुरुष हर तरह के भोजन को प्रेमभाव से स्वीकार करते हैं। निन्दित भोजन सूक्ष्मस्तर पर प्रभावित होता है। जिसकी पहचान योग्य व्यक्ति ही कर सकता है। अतः भोजन की निन्दा किये बिना भोजन ग्रहण करें। **इष्टमिष्टैः सह अश्नीयात्** – अपने इष्ट साथी, मित्र, जिनका स्वभाव आपके प्रति मधुर हो जो आपके शुभचिन्तक हों ऐसे साथियों के साथ भोजन करना चाहिये। जो आपके लिये अशुभ विचार रखते हों ऐसे साथियों के साथ भोजन करने से बचें। **शुचिभक्तजन अहृतम्** – पवित्र और भक्त एवं सकारात्मक स्वभाव के व्यक्ति या स्वामी भक्त सेवक के द्वारा भोजन परोसा जाना चाहिये। क्योंकि भोज्यपदार्थ पर नकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव पड़ता है। इसीलिये एकान्त में भोजन करना श्रेष्ठ माना जाता है। भोजन पर दृष्टिपात होने भोजन प्रभावित होता है। इसीलिये भोजन को ढककर रखा जाता है, और पाकशाला को भी पवित्र स्थान माना जाता है। यहां विशेष व्यक्ति ही पवित्रावस्था में ही स्नानादि करके ही प्रवेश करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी सामूहिक भोजन या भण्डारे होने की स्थिति भोजन रखने के लिये अलग से भण्डारगृह होता है, जिसमें पवित्रता का ध्यान रखा जाता था।

त्याज्य भोजन –

भोजनं तृणकेशादिजुष्टमुष्णीकृतं पुनः । शाकावरान्नभूयिष्ठमत्युष्णलवणं त्यजेत् ॥ अ०हृ०- सूत्रस्थानम् 8.39

भोजनं तृणकेशादि – जिस भोजन में घास या कूड़ा, केश (बाल) आदि हो, **जुष्टम्** – जूठा भोजन हो, **उष्णीकृतं पुनः** – जिस ठण्डे हुये भोजन को पुनः गर्म किया गया हो, ऐसा भोजन न करें। **शाक अवर अन्न भूयिष्ठम्** – कमजोर शाक और कमजोर अन्न, जिसकी पौषकता नष्ट हो गई हो, उस अन्न को न खायें। **अति उष्ण लवणं त्यजेत्** – अधिक गर्म और अधिक नमक युक्त भोजन हो तो ऐसे भोजन को त्याग देना चाहिये।

वर्तमान समय की चकाचौंध में व्यक्ति की व्यस्ततम दिनचर्या है जिसके कारण मनुष्य अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाता है। वर्तमान समय में दुनियां के साथ तालमेल बिठाकर अधिकस्य अधिक फलम् के भाव को मानकर भोजन में जितना संयम रख सकें, अवश्य रखना चाहिये। भोजन सम्बन्धी अनुशासन या शास्त्रीय विधि का पालन अवश्य करना चाहिये। क्योंकि मनुष्य खानपान सम्बन्धी गलतियों को करके आगन्तुक रोगों (वे रोग जो बाहरी कारणों से उत्पन्न हों उन्हें आगन्तुक रोग कहते हैं) को निमन्त्रण देता है।

सन्दर्भग्रन्थ

1. त्रिपाठी, डॉब्रह्मानन्द, अष्टाङ्गहृदयम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2022
2. गुप्त, अत्रिदेवजी, चरक संहिता, (प्रथम खण्ड), भार्गव पुस्तकालय गायघाट, बनारस,
3. त्रिपाठी, डॉकृष्णमणि, रघुवंशम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2023, पृ. 35
4. गुप्त, अत्रिदेवजी, चरक संहिता, (द्वितीय खण्ड) भार्गव पुस्तकालय गायघाट, बनारस, 2000, पृ. 295



संक्षिप्तीकरण –

- ❖ अ०ह० – अष्टाङ्गहृदयम्,
- ❖ च०सं० – चरकसंहिता,
- ❖ रघु० – रघुवंशम्,
- ❖ भा०प्र० – भावप्रकाश